ISSN-0976-9196
BHASVATI
PEER REVIEWED
A REFEREED JOURNAL
U.G.C. - CARE LIST NO.
Indian Langrage-100
(Previously UGC Journal
No. 40760)

भास्वती

(षाण्मासिकी शोधपत्रिका)

सम्पादक :

प्रो० उमारानी त्रिपाठी

संस्कृतविभागाध्यक्ष

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठम्, वाराणसी

अष्टात्रिंशदङ्क
एवं
नवत्रिंशदङ्क

संयुक्ताङ्क { जुलाई-दिसम्बर 2020
जनवरी-जून 2021

अनुक्रम

क्रम	लेखक	शोधपत्र-विषय	पृष्ठ
1.		श्रीरामकीर्तिमहाकाव्ये प्रतिबिम्बिता थाईसंस्कृतिः	प्रो० उमारानी त्रिपाठी 1
2.		रघुकुल-कथावल्ली-महाकाव्यस्य नैसर्गिकी सुषमा	डॉ० ज्योत्स्ना त्रिपाठी 6
3.		ऋग्वेदसंहितायाञ्चिकित्साशास्त्रीयसन्दर्भाः	डॉ० दीपक कुमार 9
4.		महाकविकालिदासविरचिताभिज्ञानशाकुन्तलस्य वैशिष्ट्यम्	डॉ० आशुतोष गुप्त 18
5.		संस्कृतकाव्यशास्त्रे रसविमर्शः	डॉ० रचना रस्तोगी 24
6.		आचार्य भर्तृहरि एवं आचार्य अभिनवगुप्त की दृष्टि से प्रतिभा	डॉ० कृष्णकान्त शर्मा 31
7.		कविराज राजशेखर का आचार्यत्व	प्रो० प्रभुनाथ द्विवेदी 37
8.		संस्कृत भाषा, संस्कृति और आधुनिकता	प्रो० राजेश्वर मिश्र 47
9.		नैषध में बौद्धधर्म तथा दर्शन के कतिपय सन्दर्भ	प्रो० मुरली मनोहर पाठक 55
10.		भ्रष्टाचार की चुनौती एवं आचार्य कौटिल्य	प्रो० नीरज शर्मा 59
11.		भारतीय विश्वासों की आधारभूमि : माँ गंगा	डॉ० रचना शर्मा 64
12.		ऋग्वेद में सृष्टि विषयक अवधारणा	डॉ० सुषमा शुक्ला 73
13.		बौद्ध दर्शन में लौकिक न्यायों का शिक्षा-पद्धति के रूप में प्रयोग	डॉ० अनीता राजपाल 78
14.		भारतीय परम्परा में बड़े विद्यापीठों से भिन्न अन्य प्रमुख शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्थाएँ	डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी 85
15.		यज्ञीय ऋतित्वज् विमर्श	डॉ० सुधीर कुमार शर्मा 91
16.		'भ्रष्टाचारसप्तशती' में जन-जागरण का विगुल	डॉ० सीमा यादव 96
17.		'आद्याचतुश्शती' में वर्णित मानवीय-मूल्य	डॉ० अनीता 101
18.		'मत्स्यपुराण' में स्वप्नविमर्श	डॉ० दीपक कुमार 108
19.		वाल्मीकिरामायण में दण्ड-सिद्धान्त : बालि-वध के विशेष संदर्भ में	डॉ० सूर्यभान सिंह 113
20.		'अथर्ववेद' में प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ० भास्कर प्रसाद द्विवेदी 124

21. महाकवि कालिदास के रूपकों में करुणरसनुशीलन	डॉ0 स्नेहलता शर्मा	133
22. विदुरनीति में कठोपनिषद् के सन्दर्भ	डॉ0 लक्ष्मी मिश्रा	138
23. प्राचीन काल में धर्मशास्त्र की प्रवृत्तियाँ	डॉ0 हिमा गुप्ता	143
24. पण्डित बालकृष्ण प्रणीत 'शारदामणिलीलाचरितम्' महाकाव्य में सांस्कृतिक चेतना	डॉ0 संगीता आर्य	149
25. महाभारत में निहित वर्तमान राजनीतिक समस्याओं का निदान	डॉ0 जहाँ आरा	155
26. श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार कर्म-स्वातन्त्र्य	डॉ0 मिन्टी पाण्डेय	162
27. पातञ्जल योगदर्शन में कर्मवाद	छाया	165
28. 'गोपथब्राह्मण' में ब्रह्मचर्य आश्रम : एक अध्ययन	सूर्य प्रकाश पाण्डेय	170
29. 'अद्वैतवेदान्त' में प्रामाण्य-विचार	रागिनी पाठक	174
30. वत्सराजकृत 'कर्पूरचरित' की काव्यशास्त्रीय समीक्षा	कु0 निशा	178
31. 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य में राजधर्म	डॉ0 अनीता	182
32. भास के रूपकों में ज्योतिषशास्त्रीय सन्दर्भ	सुमन कुमारी	187
33. पर्यावरण-प्रदूषण समस्या : वैदिक निदान	पूजा पाण्डेय	193
34. 'रत्नावली' नाटिका में रसाभिव्यक्ति	रामलाल पटेल	198
35. 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के सन्दर्भ में रस-सिद्धान्त एवं उनके अनुप्रयोग	विजय शंकर सिंह	205
36. संस्कृत भाषा और शिक्षण साहित्य में पं0 अम्बिकादत्त व्यास का अमूल्य योगदान	हेमा सिंह	213
37. Vedantic World View	Dr. Devendra Singh	223

❐

भ्रष्टाचार की चुनौती एवं आचार्य कौटिल्य

प्रो० नीरज शर्मा*

वर्तमान भारतीय राजनैतिक-आर्थिक परिदृश्य में भ्रष्टाचार एक विकराल समस्या के रूप में समग्र व्यवस्था को चुनौती दे रहा है। प्राचीन भारतीय चिन्तन-परम्परा में आचार्य कौटिल्य ने राजव्यवस्था में अमात्यों, विभागाध्यक्षों, कार्मिकों के लिए तथा सार्वजनिक जीवन और राजकोष से जुड़े हुए सम्पूर्ण परितन्त्र के लिए वित्तीय शुचितापूर्ण विधि-नियमों की व्यवस्था प्रदान की। छठी शताब्दी इस्वीय पूर्व भारत में आचार्य कौटिल्य ने व्यवस्था के जिन छिद्रों को सूक्ष्मता से देखा-अनुभव किया, अनुभव किया, उनका वर्णन, निवारण उपाय, प्रबन्धन का भी विवेचन अर्थशास्त्र के द्वितीय अधिकरण के अष्टम अध्याय में किया है। आचार्य कौटिल्य ने एक महत्त्वपूर्ण और सार्वकालिक विलक्षण तथ्य का उद्घाटन किया कि जिस प्रकार पानी में रहती हुई मछलियों के विषय में यह जानना कि वे पानी कब पीती हैं, अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार राज्य के विभिन्न विभागों में नियुक्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों के भ्रष्टाचार, वित्तीय अनियमितताओं को जानना भी प्रायः असम्भव है। आचार्य कौटिल्य के अनुसार नियुक्ति से पूर्व सभी पदाधिकारियों का विधिवत परीक्षा होनी चाहिए। अर्थशास्त्र के उपर्युक्त परीक्षा प्रकरण में कहा गया है कि जिस प्रकार जिह्वा पर रखे हुए विष या मधु के सम्बन्ध में कोई यह चाहे कि मैं इसका स्वाद न लूँ तो यह असम्भव है, ठीक उसी प्रकार राज्य के अर्थसम्बन्धी कार्यों में नियुक्त कार्मिक उस अर्थ का कुछ न कुछ आस्वादन-अपहरण अवश्य ही करते हैं—

मत्स्या यथान्तस्सलिले चरन्तो ज्ञातुं न शक्याः सलिलं पिबन्तः।
युक्तास्तथा कार्यविधो नियुक्ता ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः।।
यथा ह्यनास्वादयितुं न शक्यं जिह्वातलस्थं मधु वा विषयं वा।
अर्थस्तथा ह्यर्थचरेण राज्ञः स्वल्पोऽप्यनास्वादयितुं न शक्यः।।[1]

आचार्य कौटिल्य जहाँ अमात्यों, विभागाध्यक्षों की योग्यता, पात्रता, नियत संख्या का वर्णन करते हैं, वहीं वे सम्बन्धित विभागों की समग्रतः विशेषज्ञता की अपरिहार्यता का निर्देश भी देते हैं। मन्त्री सूक्ष्म दृष्टिसम्पन्न, क्लेशसहिष्णु, कुशलवक्ता, दृढ़ राज्यभक्तियुक्त, सेवाप्रिय, आरोग्य-शील सम्पन्न होने चाहिए। विभिन्न विभागाध्यक्ष भी सदाचार-सम्पन्न और राज्य के प्रति उत्तरदायी, साथ ही विभागीय आयोजना कार्यक्रम, क्रियान्वयन-प्रबन्धन में निपुण होने चाहिए।

आचार्य कौटिल्य ने 'समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यायनम्' प्रकरण में राजकर्मचारियों, अधिकारियों द्वारा किये जाने वाले 40 प्रकार के गबन का उल्लेख किया है। इस प्रकार का भ्रष्ट आचरण राजकोष को हानि पहुँचाता है एवं लोककल्याणकारी राजव्यवस्था के समुचित संचालन में बाधा उपस्थित करता

* अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर।

है। भारत विश्व के भ्रष्टतम देशों की पंक्ति में अग्रसर है। ढाई हजार वर्ष पूर्व भी कल्याणकारी राजव्यवस्था के प्रहरी आचार्य कौटिल्य ने भ्रष्टाचार के जिन क्षेत्रों को चिह्नित किया है और भ्रष्ट कार्मिकों को दण्डित करते हुए कोष-वृद्धि का प्रबन्धन किया, वह चिन्तन वर्तमान भारत में अधिक प्रासंगिक-उपादेय एवं तत्काल अनुकरणीय है। प्राचीन काल में कर-संग्रहण आदि विशिष्ट क्षेत्रों में भ्रष्टाचार परिलक्षित होता था और वर्तमान राजव्यवस्था में कर-संग्रहण अर्थ-नियोजन के साथ लोककल्याण के लिए विहित अर्थ के व्यय एवं उपयोजन दोनों में भरपूर भ्रष्टाचार दिखाई देता है।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार राजकोष-क्षय के आठ कारण होते हैं—प्रतिबन्ध, प्रयोग, व्यवहार, अवस्तार, परिहापण, उपभोग, परिवर्तन तथा अपहार।

अपेक्षित कर का संग्रह करना, संगृहीत कर को अपने अधिकार में न रखना तथा अधिगृहीत कर को राजकोष में न पहुँचाना त्रिविध प्रतिबन्ध कहलाता है। जो कार्मिक प्रतिबन्ध के लिए उत्तरदायी है, उसके ऊपर कौटिल्य दस गुना जुर्माना किये जाने का निर्देश देते हैं।[2] राजकोष के लिए संगृहीत द्रव्य से लाभ कमाना तथा मूलधन को कोष में जमा करना 'प्रयोग' कहलाता है। कोष-द्रव्य का व्यापार करना 'व्यवहार' कहा जाता है। प्रयोग तथा व्यवहार के द्वारा कोष को हानि पहुँचाने वाले के लिए आचार्य कौटिल्य दो गुना जुर्माने का प्रावधान करते हैं। निर्धारित समय पर कर-संग्रहण न करके उत्कोच की इच्छा से अन्य समय धन एकत्र करने को 'अवस्तार' कहते हैं जिसके लिए पाँच गुना राशि का दण्ड निर्धारित है। कुप्रबन्धन के कारण नियत आय कम हो जाये तथा व्यय अधिक बढ़ जाये तो 'परिहापण' की स्थिति होती है जिसके जिम्मेदार कार्मिक को चौगुनी राशि का दण्ड-विधान किया गया है।[3] राजकोष के द्रव्यों का स्वयं एवं परिजनों द्वारा 'उपयोग' कहलाता है। रत्नोपभोग पर प्राणदण्ड, सार द्रव्योपभोग पर मध्यम साहसदण्ड फल्गु कुप्यादि द्रव्योपभोग पर द्रव्य वापस लेकर समान दण्ड का विधान किया गया है। राजद्रव्यों से दूसरे द्रव्यों को बदल देना 'परिवर्तन' है जिसका दण्डविधान 'उपभोग' के ही समान है। प्राप्त आय का लेखा नहीं रखना तथा निर्धारित व्यय को लेखों में दर्शाते हुए वास्तव में व्यय नहीं करना 'अपहार' कहलाता है जिसके लिए उत्तरदायी कार्मिक को बारह गुना दण्ड-राशि का विधान कौटिल्य करते हैं।[4] वर्तमानकालीन परिवेश में बिक्रीकर, परिवहन पथकर, आयकर आदि विभागों की वास्तविक स्थितियाँ सभी जानते हैं, किन्तु इन पर प्रभावी नियन्त्रण का साधन नहीं है। कौटिल्य प्रोक्त दण्ड-विधान का दशांश भी लागू हो जाये तो इन विभागों में पूर्ण स्वच्छता दृष्टिगोचर होने लग जाये।

राजव्यवस्था में नियोजित मंत्री, विभागाध्यक्ष, कार्मिकगण जिन 40 प्रकार से राजद्रव्य का अपहरण करते हैं, वे निम्नलिखित हैं—

1. पूर्व सिद्धं पश्चादवतारितम् – पहले प्राप्त द्रव्य का लेखांकन बाद में करना – धोखाधड़ी।
2. पश्चात्सिद्धं पूर्वमवतारितम् – बाद में प्राप्य द्रव्य का लेखांकन पूर्व में ही कर लेना।
3. साध्यं न सिद्धम् – निर्धारित ग्राह्य कर को रिश्वत आदि लेकर छोड़ देना – वसूल न करना।
4. असाध्यं सिद्धम् - अग्राह्य (विप्र, देवालयादि से) कर को वसूल करना।

5. सिद्धमसिद्धं कृतम् – प्रदत्त कर की वसूली नहीं लिखना।
6. असिद्धं सिद्धं कृतम् - अप्रदत्त कर की वसूली लिख देना।
7. अल्पसिद्धं कृतम् – अपूर्ण कर को पूर्ण प्राप्ति के रूप में दर्ज करना।
8. बहुसिद्धं अल्पं कृतम् – पूर्ण प्राप्त कर को अपूर्ण रूप में दर्ज करना।
9. अन्यत्सिद्धमन्यत्कृतम् – प्राप्त द्रव्य के स्थान पर अन्य द्रव्य की प्राप्ति लिखना।
10. अन्यतः सिद्धमन्यतः – एक पुरुष से प्राप्त कर को अन्य के नाम से दर्ज कर लेना।
11. देयं न दत्तम् – राज्यादेश से प्रजादि में प्रदेय – वितरणीय वस्तु का वितरण नहीं करना।
12. अदेय दत्तम् – नहीं देने योग्य का वितरण करना।
13. काले न दत्तम् – समय पर नहीं देना।
14. अकाले दत्तम् – निर्धारित समय के उपरान्त देना।
15. अल्पं दत्तं बहुकृतम् – थोड़ा देकर बहुत लिख देना।
16. बहुदत्तं अल्पं कृतम् – बहुत देकर थोड़ा लिखना।
17. अन्यत्दत्तमन्यत्कृतम् – निर्धारित प्रदेय वस्तु के स्थान पर कोई और वस्तु दे देना।
18. अन्यतो दत्तमन्यतः कृतम् – निर्धारित व्यक्तिवर्ग के स्थान पर अन्य किसी को दे देना।
19. प्रविष्टमप्रविष्टं कृतम् – ग्राह्य धन को वसूल करके भी कोष में जमा नहीं करना।
20. अप्रविष्टं प्रविष्टं कृतम् – रिश्वत के कारण कर-वसूली नहीं करके भी उसे जमा लिख देना।
21. कुप्यमदत्तमूल्यं प्रविष्टम् – वस्त्रादि कुप्यद्रव्यों की पूरी कीमत दिये बिना ही पूरा भुगतान लिखना।
22. दत्तमूल्यं न प्रविष्टम् – प्रदत्त मूल्य का लेखांकन नहीं करना, सही मूल्य नहीं लिखना।
23. संक्षेपो विक्षेपः कृतः – एकनिष्ठसंगृहणीय कर को बाँट-बाँट कर लेना।
24. विक्षेपः संक्षेपो वा – पृथक्-पृथक् संग्रहणीय कर को एक साथ इकट्ठा वसूलना।
25. महार्घमल्पार्घेल परिवर्तिताम् – बहुमूल्य वस्तु को अल्पमूल्यवान वस्तु से परिवर्तित करना।
26. अल्पार्थ महार्घेण वा – अल्पमूल्य वस्तु को महार्घवस्तु से बदल देना।
27. समारोपिताऽर्घः – बाजार में वस्तुओं का भाव बढ़ा देना।
28. प्रत्यवरोपितो वा – वस्तुओं के भाव घटा देना।
29. रात्रयः समारोपिता वा – वेतन के दिन बढ़ाकर लिखना।
30. प्रत्यवरोपिता वा – स्वीकृत वेतन के दिन घटाकर वेतन भुगतान करना।
31. संवत्सरो मास विषमः कृतः – अधिकमास सहित संवत्सर को अधिकमास वाला लिखना।
32. मासो दिवस विषमो वा – महीने के दिन घटा-बढ़ाकर अधिक लाभ को स्वयं ले लेना।

33. मासागम विषमः – मासिक कामगारों की संख्या अधिक बताकर उनके नाम का वेतन स्वयं ले लेना।

34. मुख्य विषयः – कर-संग्रहण के निश्चित स्रोत के स्थान पर अन्य स्रोत दर्शाना और प्रसिद्ध करना।

35. निर्वर्तन विषमः – कुटिल उपाय से अतिरिक्त धन वसूलना।

36. धार्मिक विषमः – धर्मार्थ प्रदेय द्रव्य को पूरा न देकर उसमें से कुछ स्वयं रख लेना।

37. पिण्ड विषमः – बहुतों से संग्राह्य कर में से किसी मनुष्य को छोड़ देना (रिश्वत लेकर)।

38. वर्ण विषमः – ब्राह्मणादि वर्णों की विषमता से धनापहरण करना।

39. अर्ध विषमः – मूल्य बढ़ाकर लाभ कमाना।

40. मान विषमः – तौल आदि में परिवर्तन करके धनापहरण करना।
मापन विषमः – नापने में विषमता करके लाभ कमाना।

41. भाजन विषमः – पात्र विषयक विषमता से धन अपहरण करना।

आचार्य कौटिल्य ने राजकोष के संग्रहण एवं सार्वजनिक वितरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया में सम्भावित समस्त भ्रष्टाचार को रेखांकित किया है। सरकारी कार्यालय हो अथवा निजी क्षेत्र, भण्डारण हो या वितरण, सर्वत्र कार्मिकों के सम्भावित वित्तीय व्यभिचार यहाँ उल्लिखित है। हमें जो वित्तीय गड़बड़ी के कारण दिखाई दे रहे हैं, वे सभी कहीं न कहीं उपर्युक्त बिन्दुओं में समाहित हो जाते हैं। राजकीय अधिकारियों द्वारा कल्याणकारी मनरेगा आदि योजनाओं में फर्जी मस्टरोल से लेकर व्यय के वास्तविक प्रयोजन तक सर्वत्र जो स्थिति देखी जा रही है, वह भी उपर्युक्त आचार्य कौटिल्य प्रोक्त सम्भावित हरणउपाय-क्षेत्रों में पर्यवसित हो रही है। भारतीय मनीषा की सार्वकालिकता एवं सार्वभौमिकता का ज्वलन्त उदाहरण अर्थशास्त्र है। आचार्य कौटिल्य ने इन बाधाओं के प्रशमन के भ्रष्टाचार-निवारण के कतिपय सशक्त उपाय भी निर्दिष्ट किये हैं, जो निम्नलिखत हैं—

1. राज्यशासन द्वारा सम्पूर्ण नगर-ग्राम में भ्रष्टाचारमुक्त शासन की सार्वजनिक उद्घोषणाएँ करानी चाहिए।

2. यदि किसी विभागाध्यक्ष के सम्बन्ध में सन्देह हो, तो शासक उसे, उसके प्रधान निरीक्षक, भाण्डागारिक (कोषाधिकारी), लेखक, कर-संग्राहक, राजपुरुष, अपराधी के परामर्शदाता, उसके नौकरों को अलग-अलग बुलाकर धनापहरण की जानकारी लेने तथा इनमें से किसी भी मिथ्यावादी को अपराधी के समान ही दण्ड देवें।[6]

3. एक अधिकारी पर यदि बहुत से लोग आरोप लगा रहे हों तथा अभियुक्त अधिकारी सब आरोपों को स्वीकार नहीं कर रहा, तो एक ही अभियोग सम्पूर्ण गवाही के साथ उसे पूरे गबन का अपराधी सिद्ध करता है। अत्यधिक भ्रष्टाचार हो, किन्तु उसके अत्यल्प भी साक्ष्य मिलते हों तो सम्पूर्ण भ्रष्टाचार का अपराध सिद्ध समझना चाहिए।

4. राज्यहित में भ्रष्टाचार की सूचना देने वाले को अपहृत धन प्राप्त होने पर उसका षष्ठांश उसे प्रदान करना चाहिए। यदि सूचना देने वाला व्यक्ति राजपुरुष है तो उसे धन का बारहवाँ भाग दिया जाना चाहिए। यदि सूचना दिये जाने पर उस अधिकारी पर दोष सिद्ध न हो तो सूचना देने वाले पुरुष को उचित शारीरिक या आर्थिक दण्ड देना चाहिए। किसी भी अपराधी को कभी भी क्षमा नहीं करना चाहिए।[7]

5. शासक को चाहिए कि अपराध सिद्ध भ्रष्ट अधिकारियों से उनका सम्पूर्ण धन छीन लेवे तथा उन्हें पदच्युत करके हेय कार्यों में नियुक्त करना चाहिए, ताकि वे फिर धनापहरण नहीं कर सके तथा अपहृत धन को स्वयं ही उगल देवें—

आस्रावयेच्चोपचितान् विपर्यस्येच्च कर्मसु।
यथा न भक्षयन्त्यर्थं भक्षितं निर्वमन्ति वा।।[8]

यद्यपि आचार्य कौटिल्य ने राजव्यवस्था में कार्मिकों के लिए सम्मानपूर्वक जीवन-निर्वाह के लिए यथोचित वेतन-भत्तों तथा अन्य सुविधाओं का प्रावधान किया है, उनके आश्रित स्त्री-पुत्रादि के लिए भी कृपाधन, पारिश्रमिक की व्यवस्था की है, तथापि यदि कार्मिक कार्य में अनियमिततापूर्वक भ्रष्टाचार करता है तो उसके लिए कठोर दण्ड का भी निर्देश देते हैं। कार्य-संस्कृति के वर्तमान नियन्ताओं को आचार्य कौटिल्य से मार्गदर्शन ग्रहण करना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. कौटिल्य अर्थशास्त्रम् 2.9.3-4 सं0, वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2005, पृ0 117
2. कौटिल्य अर्थशास्त्रम् 2.8.3, वही, 109
3. कौटिल्य अर्थशास्त्रम् 2.8.3, वही, 110
4. कौटिल्य अर्थशास्त्रम् 2.8.6, वही, 110
5. कौटिल्य अर्थशास्त्रम् 2.8 सं0, टी. गणपतिशास्त्री, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम सम्पुट, पृ0 154
6. कौटिल्य अर्थशास्त्रम् 2.8, वही, 157
7. कौटिल्य अर्थशास्त्रम् 2.8, वही, 158
8. कौटिल्य अर्थशास्त्रम् 2.9, वही, 165

❐